भारतीय परिप्रेक्ष्य में उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों में परम्परागत एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रभाव अध्ययन

डॉ0 शत्रुघन

असि0 प्रो0 बी0एड0 विभाग

श्रीकृष्ण जनका देवी महाविद्यालय मंगलपुर, कानपुर देहात उ0प्र0)

Email: shatrughanyadav222@gmail.com

सारांश

विशाल संसार प्रकृति की एक सुन्दरतम् देन है। बुद्धि और विभिन्न कौशलों के आधार पर मनुष्य ने विश्व में अवतरित होकर नाना प्रकार के क्रियाकलाप करते हुये एक समाज की रचना की है। जहाँ मनुष्य है वहाँ कोई न कोई समाज अवश्य होता है। समाज का उत्थान समाज की आवश्यकताओं एवं उनकी पूर्ति पर निर्भर करता है। अतः आवश्यकता और पूर्ति के मार्ग में अनेक नियम, अनेक परम्परायें, अनेक विधियाँ, जिन्हें रीतिरिवाज कहते हैं, संचालित होते रहते हैं। जो समयानुसार हमारी परम्परा अथवा संस्कृति के रूप में जाने जाते है। जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती है, समाज में नित्य नये परिवर्तन होते रहते हैं। आवश्यकता के आधार पर ही नवीन सृजन होते हैं और वही समाज को परिमार्जित एवं परिष्कृत करने का कार्य करते हैं। आज विश्व की जनसंख्या लगभग छै अरब है जिसमें भारतवर्ष की जनसंख्या भी एक अरब के आस-पास आँकी जा रही है। अतः स्थिति जनसंख्या विस्फोट तक पहुँचती प्रतीत हो रही है। किसी भी क्षेत्र में जब जनसंख्या का दबाव अधिक बढ़ जाता है तो यह दबाव व्यक्तियों के जीवनयापन में सहायक संसाधनों का दोहन करने लगता है और एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि साधन और साधक दोनों का ही स्थिति क्षीण हो जाती है। यह समस्या विकासशील देशों के लिये अधिक गम्भीर है क्योंकि वही सामाजिक एवं आर्थिक विकास की गति, जनसंख्या के विकास की गति से पिछड़ी हुयी है। प्रायः किसी देश की कोई भी समस्या उस देश के बने बनाये स्वरूप पर प्रभाव डालती है और इसी प्रभाव के कारण ही स्वरूपों में बदलाव आता है। भारत एक 'ईश्वरवादी चिन्तनवाला' देश है। इस देश में सन्तानोत्पत्ति को रोकना एक दुष्कार्य माना जाता था। समय के साथ-साथ इस प्रकार की विचारधारा में परिवर्तन आया। मनुष्यों की बढ़ती हुयी आवश्यकताओं ने जनसंख्या वृद्धि की दर के विषय में चिन्तन को एक नया मोड़ दिया।

वर्तमान युग में हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक गति 2.54: है। स्वतंत्रता के पूर्व यह 1.4: थी। विश्व की जनसंख्या जो 1968 में 340 करोड़ थी यह वृद्धि चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का विकास होने पर मृत्युदर की संख्या की दर घटने के कारण हुयी। सन् 1921 में भारत में जनसंख्या दर 49.2 प्रति हजार थी और मृत्यु दर 48.6 प्रति हजार। सन् 1966 में जन्म दर 41 प्रति हजार हो गयी और मृत्यु दर 16 प्रति हजार रह गयी। सन् 1951 में भारत की जनसंख्या 36 करोड़ थी। सन् 1981 में 68 करोड़ 38 लाख हो गयी। सन् 1991 में यह जनसंख्या लगभग 84.630 करोड़ हो गयी थी। संयुक्त राष्ट्र के आंकलन के अनुसार 1999 में

भारत की जनसंख्या 99.81 करोड़ है। उपरोक्त विवेचन से जनसंख्या के विकास की गति 3.3 लाख) का आभास होता है। इस संदर्भ में एन.सी.ई.आर.टी. की एक पत्रिका में एक शिक्षा विद्वान ने अपने शब्दों में इस प्रकार लिखा है कि - ''निरन्तर बढ़ती हुयी जनसंख्या गुणात्मक उन्नति की समस्त योजनाओं की जड़ खोदती हुयी जान पड़ रही है।'' किसी भी समाज की जनसंख्या के द्वारा ही उस समाज की जैविकीय विशेषताओं का प्रतिनिधित्व होता है। जनसंख्या की विशेषताओं के अनुसार ही समाज एक विशेष रूप प्राप्त होता है और वही सामाजिक ढाँचे का निर्माण करता है। यदि जनसंख्यात्मक विशेषताओं में परिवर्तन हो जाये तो सामाजिक परिवर्तन की पूरी सम्भावना हो जाती है।'' ंसीसी विद्वान कोस्टे ने जनसंख्यात्मक कारकों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि ''समाज की सभी महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने के लिये जनसंख्यात्मक कारक सबसे अच्छा आधार है। जनसंख्या की वृद्धि और इसके घनत्व के द्वारा सभी सामाजिक दशाओं के उद्विकास तक को समझा जा सकता है।''

[डॉ0 शत्रुघन. भारतीय परिप्रेक्ष्य में उच्च शिक्षा के विद्यार्थियों में परम्परागत एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रभाव अध्ययन. *The International Journal of Interpretation, Observation and Analysis*, 2025; Volume 3, Issue 1:149-162 (July-September). ISSN 2349-0713, Peer-reviewed (online/offline), Refereed, Indexed and International Journal (Since 2013), Global Impact Factor: 5.776

की-वर्डः शांति, विनम्रता, दया स्नेह, क्षमा, उदारता, सादगी, त्याग, विनय, शालीनता, न्याय, दृढ़ता।

प्रस्तावना

जनसंख्या तथा आर्थिक परिवर्तनः जनसंख्या की वृद्धि समाज के आर्थिक स्वरूप को विशेष रूप से प्रभावित करती है। जनसंख्या वृद्धि समाज के आर्थिक स्वरूप में परिवर्तन लाती है। बढ़ती हुयी जनसंख्या से समाज की आर्थिक समृद्धता पर एक बड़ी बाधा उत्पन्न की है।

सामाजिक संगठन पर जनसंख्या का प्रभाव : जनसंख्या का प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक संस्था को प्रभावित करता है। समाज के संगठनों का स्वरूप और उनकी मान्यतायें आबादी पर निर्भर रहती है। सामाजिक संगठन मे मुख्यतः तीन रूपों को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक विभेदीकरण, सामाजिक स्तरीकरण और पारिवारिक संगठन।

जनसंख्या के विचारों में परिवर्तनः जनसंख्या का घनत्व अधिक होने से और व्यक्तियों में गतिशीलता की प्रवृत्ति होने से समानता और प्रजातन्त्र की विचारधारा का प्रचार और प्रसार सरलता से हो जाता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि जनसंख्या की वृद्धि से सामाजिक विभेदीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती है फलस्वरूप व्यक्ति समूह के नियन्त्रण में नहीं रह पाता है। इस स्थिति में व्यक्तिवादी विचारधारा का जन्म होता है और व्यक्ति जातिगत संकीर्णता से निकलकर उदार दृष्टिकोण अपनाकर सम्पूर्ण मानवता के बारे में चिन्तन करने लगता है। साथ ही विभिन्न वर्गों जातियों, धर्मो, परिवारों और प्रजातियों के मध्य सम्पर्क बढ़ाता है और एक-दूसरे को समझने की भावना का भी विकास होता है।

परम्परागत जीवन मूल्यों पर जनसंख्या का प्रभावः वर्तमान में बढ़ती हुयी जनसंख्या ने परम्पराओं और जीवन मूल्यों के साम्य को अस्थिर कर दिया है। अतः मूल्यों में बिखराव, परम्पराओं से टकराव तथा समाज से विलगाव पैदा होता जा रहा है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुये आज शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार के पाठ्यक्रम सम्मिलित किये जा रहें है जो प्राचीन काल की शिक्षा परम्परा से भिन्न है। वर्तमान में सामाजिक क्षेत्रों में सामन्जस्य स्थापित करते हुये जीवनयापन का लक्ष्य ही शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

मानव और सामाजिक मूल्यों का विकासः समाज के विकास की गति ही किसी देश को उन्नतिशील, प्रगतिशील और आधुनिक बनाती है। यह विकास की प्रक्रिया लाखों वर्ष में विभिन्न स्तरों से होकर गुजरती है व्यक्ति और समाज का एक दूसरे से सापेक्ष सम्बन्ध है क्योंकि एक के अभाव में दूसरे की स्थिति सम्भव नहीं। व्यक्ति के स्वत्वों की रक्षा हेतु समाज बना है और समाज के अस्तित्व के लिये व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। कर्मों के आधार पर समाज में चार वर्ण बनाये गये- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। आदि मानव से जाति तक आते-आते समाज में रहने के लिये बहुत से नियम बनाये गये। विवाह जैसी महत्वपूर्ण संस्था का निर्माण हुआ। इसी प्रकार सत्य, संयम और पूजा हमारे समाज के मूल्य बने जो कालान्तर में और भी सुदृढ़ होते गये। विज्ञान की प्रगति से ही भौतिकवादी समाज का निर्माण हुआ। विज्ञान एक ओर जहाँ व्यक्ति की भौतिक समस्याओं को हल करता है वहीं दूसरी ओर मानसिक समस्याओं को जटिलतर बनाता चलता है। आस्था के बिना सृजन सम्भव नहीं और विज्ञान आस्था का नहीं, आवश्यकता का क्षेत्र है। विज्ञान ने समाज को प्रगतिशील समाज बनाने में, अन्य देशों के तकनीकी शोधों में उनकी बराबरी करने में, व्यक्ति को सुविधा सम्पन्न बनाने में बहुत बड़ा कार्य किया किन्तु इसने समाज के उन मूल्यों पर दुष्प्रभाव भी डाला जिन मूल्यों से किसी भी देश की संस्कृति, साहित्य और धर्म की पहचान होती है। सृष्टि पर जीवन के विकास के साथ-साथ धर्म का भी व्यापक विकास हुआ। धर्म व्यक्ति को इस बात की शिक्षा देता है कि परपीड़न पाप है और जीवन को सुख प्रदान करना ही पुण्य है। समय ने भारत में अनेक प्रकार के धर्मों को विकसित किया है। इन विभिन्न धर्मों से व्यक्ति का अटूट विश्वास, अपने इष्ट और अपने पैगम्बर जुड़े हुये हैं। इन धर्मो से जुड़ें हैं अनेक सिद्धान्त, धार्मिक, धार्मिक उपदेश, आचरण, व्यवहार के तरीके, चिन्तन और आध्यात्मिक विचार।

भारत में मुख्यतः छै धर्म प्रचलित हैं :

हिन्दू, सिक्ख, जैन, बौद्ध, मुस्लिम और ईसाई। इन सभी धर्मो में जहॉ मानव के कल्याण के लिये विचार प्रस्तुत किये गये है वहीं पूजा और अर्चना के विधानों में विरोधाभास स्पष्ट हुआ है।

हिन्दु धर्मः डा0 राधाकृष्णन् ने हिन्दू धर्म की व्याख्या करते हुये लिखा है- ''यह 'धृ' धातु से निर्मित हुआ है। जिसका अर्थ बनाये रखना, धारण करना और पुष्ट करना है। वेदों में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक विधियों के अर्थ में किया गया है।''

बौद्ध धर्मः संसार के तमाम धर्म संस्थापकों की पंक्ति में बुद्ध ही एक मात्र हैं जिन्होंने मनुष्य के सम्बन्धों में सामंजस्य लाने के लिये परमात्मा की मध्यस्थता स्वीकार नहीं की तथा मनुष्यता उत्पन्न करने के लिये किसी पारलौकिक अस्तित्व का सहारा नहीं लिया। उन्होंने अपने चिन्तन और अपने धर्म को तर्क की कसौटी पर कसा है। बौद्ध संस्कृति के बुद्ध, धर्म और संघ तीन स्तम्भ है जिसमें पहला बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखता है, दूसरा उनके द्वारा निश्चित नैतिक आचरण से और तीसरा धर्म के प्रसारार्थ संगठन से। बुद्ध का मार्ग निवृत्ति का मार्ग है। धन, काम आदि की तृष्णा से ही मनुष्य स्वयं दुः ख को बढ़ाता है, अतः ऐसी तृष्णा का क्षय ही कल्याण है। यह कल्याण चित्त और आचरण की शुद्धता से प्राप्त हो सकता है, उनकी यह कल्याण की भावना समष्टिगत है।

जैन धर्म : जैन धर्म का कहना है कि त्रिरत्नों तीन नियमों) का पालन करके आत्मा, जन्म और मृत्यु के चक्र से छुटकारा पा जायेगी और निर्मल व परमानन्द पूर्ण जगत में पहुँच जायेगी। त्रिरत्न हैं- सम्यक विश्वास, सम्यक प्रतिज्ञान और सम्यक आचरण। जैन धर्म ने समाज में वर्ण व्यवस्था और कर्मकाण्डी ब्राहमण धर्म की बुराईयों के खिलाफ प्रथम प्रयास किया। सांस्कृतिक रूप से इसने साहित्य, भवन निर्माण और मूर्तिकला में भी योगदान दिया।

इस्लाम धर्म : अरबी में इस्लाम का अर्थ है प्रार्थना, आज्ञा पालन या शान्ति। इसका आशय है संसार में शान्ति की प्राप्ति के भगवान की आज्ञा का पालन करना और उसकी आधीनता स्वीकार करना। इस विश्व धर्म के मानने वाले मुस्लिम कहलाते हैं। इस्लाम सम्प्रदाय नियमबद्ध जीवन शैली में विश्वास करता है। प्रतिदिन पॉच बार और शुक्रवार को दोपहर के समय जुमें की नमाज अदा करनी होती है। उन्हें अपनी वार्षिक शुद्ध आय या पूरे कारोबार की कुल मालियत खर्च और निकालकर) का कम से कम ढाई प्रतिशत दान ''जकात'' सुपात्रों का देना होता है। मुस्लिम पंचाग चाँद पर आधारित होता है। इसका निर्णय चाँद के दर्शन से होता है।

सिक्ख धर्म : सिक्ख धर्म की स्थापना गुरु नानक साहब ने की थी। वह पंजाब में सन् 1469-1538 तक रहे। उन्होंने हिंदू और मुसलमानों के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। गुरुनानक उपदेश देते हुये कहते हैं- हे नानक! सभी एक समान हैं, न कोई उत्तम है न कोई अधम, न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा, न कोई स्पृश्य है और न कोई अस्पृश्य। श्रेष्ठ जाति उसी की है जो श्रेष्ठ कर्म करता है। पुण्यात्मा कहलाने का अधिकारी वही है जिसके घर में ईश्वर का नाम बसता है।

''राम कथा जुग-जुग अटल, जो कोई गावे नेत।
स्वर्गवास रघुवर किये सगली पुरी समेत।।''

ईसाई धर्म : ईसाई धर्म का आदि स्थान प्राचीन पैलेस्टाइन है। इस धर्म को महात्मा ईसा ने संस्थापित किया था। ईसाई धर्म एक अलौकिक शक्ति में विश्वास रखता है। यह शक्ति व्यक्ति में

विभिन्न प्रकार की प्रेरणायें उत्पन्न करती है, जिससे वह संयमित एवं पवित्र होकर अपना जीवनयापन कर सके। ईसाई धर्म ने मातृत्व, अहिंसा, सत्य व प्रेम की भावना को विशेष महत्व दिया। ईसाई धर्म का विख्यात मंत्र है-बुराई को भलाई से जीतो। इसका सन्देश है कि सभी ईश्वर के पुत्र हैं और परस्पर भाई-भाई हैं।

उपरोक्त सभी धर्मों में मानवतावाद की प्रवृत्ति पायी जाती है। सभी धर्मों ने नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर जोर देते हुये मानवीय सम्बन्धों की सरलता, निश्छलता एवं मधुरता को मानव के कल्याण एवं उनकी पूर्णता के लिये आवश्यक बताया है।

'उच्च शिक्षा की छात्र-छात्राओं तथा परम्परागत एवं सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित मानवीय समुदाय पर पड़े प्रभावों का अलग-अलग अध्ययन करना है। शोधार्थी यह जानना चाहता है कि एक शिक्षित और दूसरा अशिक्षित वर्ग इन मूल्यों से किस प्रकार प्रभावित होते रहेंगे। अतः शैक्षिक दृष्टि से इन जीवन मूल्यों का उपयोग करके शिक्षा को कितना और अधिक महत्वशाली बनाया जा सकता हैं अतः विविध रूप से चयनित और वर्गीकृत जीवन मूल्यों को लेकर उनके द्वारा भारतीय समाज पर पड़े प्रभावों का अध्ययन करना ही इस समस्या की प्रमुख विशेषता है।

परम्परा समग्रता में जातीय चेतना का जीवन्त प्रवाह हैः ''जो कुछ हमें व्यक्ति और समूह को, एक स्थानीय समूह को, उसके हर सदस्य को एक काल विशिष्ट में रीति रिवाज, विश्वास, आस्था, निष्ठा, विचारकोष, मूल्य बोध उसकी अपनी विगत पीढ़ियों से मिला है, आज जिसे वह पीढ़ी अपने योगदान के साथ आगामी पीढ़ियों को सौंपी जायेगी-परम्परा है।''

परम्परा समग्रता में जातीय चेतना का जीवन्त प्रवाह है। वह काल विछिन्न होते हुये पीढ़ियों को हस्तान्तरित होती हुयी, पीढ़ियों को आवेष्ठित करती हुयी, सामूहिक स्मृति का अंग बनकर सामूहिक सामान्य आचार विचार में प्रतिफलित होती हुयी समुच्चय में संचरण करती है। उसके स्थूल और सूक्ष्म, अतीन्द्रिय और इन्द्रिय बोगम्य रूप से स्पन्दन भी होते हैं। परम्परा संस्कृति का रथ है। परम्परा की धारा में उसे दूषित करने वाले तत्व भी आते हैं और जीवन्त परम्परा में अपने आपको प्रदूषण मुक्त करने वाले तत्व भी होते हैं। यह परम्परा जातीय जीवन को समृद्ध, सशक्त, सुन्दर और सुखद करती है। परम्परा के प्रवाह में वैचारिक क्रान्तियॉ ज्वार उत्पन्न करती हैं मगर ये वैचारिक क्रान्तियाँ, वैचारिक उद्वेलन, आन्दोलन समन्वय के बाद परम्परा का अंग होकर कुछ अंशों तक स्वीकृति पा जाते हैं। कुछ अंश घाट के पत्थर की तरह पानी डूबे रहकर भी प्रवाह के अंग नही बन पाते हैं, पीछे छूट जाते हैं और इतिहास की कच्ची सामग्री बन जाते है, मगर परम्परा समृद्ध होकर आगे बढ़ जाती है। परम्पराओं से उस देश और काल की संस्कृति निर्मित होती है और संस्कृति से ही जीवन मूल्य जन्म लेते हैं। हर युग में जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिये और जीवन के समुचित विकास के लिए कुछ ऐसे नियम निर्मित किए जाते हैं जिनका पालन करते हुये व्यक्ति

समाज में सभ्य और शिष्ट तरीके से जीवनयापन कर सकता हैं वह कार्य जिनके करने से किसी अन्य की हानि न हो, परपीड़न न हो, समाज व्यक्ति को उन्हीं कार्यों के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार नियमबद्ध शैली से जीवनयापन करने पर आदर्श मूल्यों की संस्थापना हो जाती है।

वस्तुतः परम्परायें समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को बहुत प्रभावित करती हैं, परम्पराओं से ही प्रथायें जन्म लेती है। जब समुदाय के अनेक व्यक्ति एक ही ढंग के व्यवहार करने अथवा कार्य करने की एक ही विधि को अपनाते हैं। तब यह एक सामूहिक घटना होती है। प्रथाओं का विकास किसी भी समाज में सामाजिक अन्तः क्रियाओं के दौरान अपने आप हो जाता है, प्रथाओं को आसानी से बदला नहीं जा सकता। प्रथाओं में मानवीय व्यवहार एवं क्रिया कलापों को नियन्त्रित करने की असीम क्षमता होती है। तर्क की कसौटी पर यदि देखें तो बहुत सी परम्परायें सामाजिक दृष्टि से उचित नहीं लगेगी किन्तु यह व्यक्ति के चिन्तन में इतनी अधिक दृढ़ता से स्थापित होती हैं कि इन्हें बदल पाना असम्भव सा लगता है।

प्रथायें : प्रथाओं का सम्बन्ध हमारे प्रमुख दायित्वों से होता है जिनका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है। वास्तव में प्रथायें हमारी इच्छा पर आधारित न होकर स्वंय इतनी शक्तिशाली हैं कि हम उन्हीं के अनुसार व्यवहार करने को बाध्य हो जाते है।

मूल्य : परम्पराओं से प्राप्त वह समस्त चिन्तन और क्रियाकलाप जो मानव जीवन को निर्देशित करने का कार्य करते हैं, मूल्य कहलाते हैं। सुखद भविष्य के लिए मूल्यों की शिक्षा आवश्यक है। सामाजिक व नैतिक मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा को एक सशक्त साधन बनाने की आवश्यकता है जिसके लिए यह आवश्यक है कि 'मूल्य-शिक्षा' को पाठ्यक्रम में समायोजित किया जाये।

मानव जीवन का एक समयबद्ध व्यापक दर्शन है। मानव जीवन मूल्यों से भरा है। वह एक अध्यात्मिक जीवन है। मनुष्य के विवेक पर भौतिक पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण के कारण जीवन के पुरातन मूल्यों में हमारी आस्था समाप्त सी हो गयी है। वर्तमान समय में शोषण करना शोषक को शोभनीय लगता है। आधुनिक बन जाने की होड़ में शामिल भारतवासी पश्चिमी मूल्यों से प्रभावित हो रहें है। आज के समय में आधुनिक व पुरातन मूल्यों में समन्वय लाने की चेष्टा करने की बहुत जरूरत है। शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्ति को विद्वान बनाना नहीं है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति वर्तमान संघर्षपूर्ण वातावरण में अपने अस्तित्व को पहचानने में जो बालक को आत्मविश्वासी बना सके।

भारतीय संस्कृति का स्वरूप :

संस्कृति शब्द से अभिप्राय साधारण अर्थ में प्रायः उन अर्जित व्यवहार एवं संस्कारों से लगाया जाता है जिन्हें प्राप्त हो जाने से मनुष्य परिमार्जित या सुसंस्कृत बन जाता है। वस्तुतः संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में साहित्य, कला, धर्म, मनोरंजन और आनंद में प्राप्त होने वाले रहन-सहन और विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति

की अभिव्यक्ति है। संस्कृति के द्वारा ही किसी भी समाज और देश की पहचान होती है। मनुष्य अपने विवेक के द्वारा विचार और कर्म के क्षेत्र में जो निर्माण करता है। उसे ही हम संस्कृति कहते हैं। संस्कृति किसी निर्देशित मर्यादा में नहीं बॉधी जा सकती। वह अपरिमित मानवी मर्यादा में मुखर होती है बल्कि यह कहा जा सकता है कि यह तभी सार्थक होती है। संस्कृति के बहुत से रूप हैं। केवल ज्ञान और भौतिक प्रेरणा ही इसका कारण नहीं हो सकती। जो व्यक्ति दूसरे के दुःख से दुःखी हो उठता है चाहे वह बुद्ध हो या कार्ल मार्क्स, वह उस माँ के समान है जो अपने मुख के ग्रास को अपने पुत्र के मुँह में डालने में ही प्रसन्नता का अनुभव करती है।

संस्कृति और धर्म : संस्कृति और धर्म के सम्बन्ध बहुत जटिल है। इतिहास पर दृष्टि डालने से ऐसा लगता है जैसे संस्कृति धर्म का ही अंग रही है। अपने मूल में धर्म संस्कृति से अलग है भी नहीं। इसे उलटकर भी कह सके हैं क्योंकि धर्म शब्द बहुत प्राचीन है। उसके मुकाबले में संस्कृति अर्वाचीन है। जब धर्म का रूप व्यापक था, वह संगठित नहीं हुआ था अर्थात् सम्प्रदाय नहीं बना था। एक जीवन पद्धति का परिचायक था, तब मानव जीवन का अर्थ देने वाले मूल्यों को 'संस्कृति' जैसा नाम अलग से देने की आवश्यकता ही नहीं थी और यह आवश्यकता अचानक किसी एक दिन ही पैदा हो गयी हो, ऐसा भी नहीं लगता। धर्म जब सिमटते-सिमटते खण्डों में बंटने लगा। लोक से अधिक परलोक में उसकी व्याप्ति होने लगी। मनुष्य उससे छूटने लगा और परमात्मा की सत्ता के प्रति उसका लगाव बढ़ने लगा तो धीरे-धीरे यह शब्द अस्तित्व में आया। मनुष्य संस्कृति का सहारा लेता है क्योंकि संस्कृति मनुष्य को जोड़ती है किसी भी तरह तोड़ती नहीं। वह दूसरे के लिए जीने की प्रेरणा में से रूप लेती है। संस्कृति में किसी परलोक और उसके अधिष्ठता के लिए स्थान नहीं है। जब भी धर्म को, उसको मूल अर्थो में स्वीकार किया गया है तो संस्कृति और धर्म लगभग समानार्थी बन गये हैं। संगठित धर्म और मानव धर्म इन दोनों में सदा तनाव की स्थिति रही है। लेकिन जिन धर्म का परिचय मनीषी खलिल जिब्रान ने दिया है, वह मानव धर्म ही है।

धर्म की भाषा निरन्तर खोज है। संस्कृति की भाषा सतत् आचरण है। कोई भी धर्म आचरणहीन व्यक्तियों के लिए कल्याणकारी नहीं हो सकता और आचरण की प्राप्ति कर्मकाण्ड और आडम्बरों से नहीं होती है, जीवन में धर्मपालन करने से होती है। विश्वास और आचरण साथ'-साथ ही चल सकती हैं। यही संस्कृति है जो अज्ञात खोज को भी उपयोगी बना देती है।

संस्कृति और विज्ञान : संस्कृति और विज्ञान में उतना और वैसा अन्तर नहीं है जितना विज्ञान और धर्म में। सत्य के शोधक सभी हैं परन्तु धर्म का इतिहास बताता है कि उसने पूर्वाग्रह का सहारा लेकर बार-बार इस दावे को झूठा प्रमाणित कर दिया है जबकि विज्ञान आग्रही हो ही नहीं सकता। वह तो निरन्तर प्रवाह, ज्ञान और अनुभवों पर आश्रित है। उसके चिन्तन का आधार सतत् जिज्ञासा है, नित्य नया होना, नित्य सीखने

की प्रवृत्ति उसकी नियति है इसलिए वह अहंकारी भी नहीं हो सकता। धर्म विश्वास तो वैज्ञानिक मान्यताओं की अपेक्षा अधिक सापेक्ष है। वैज्ञानिक मनुष्य की भांति धार्मिक मनुष्य को भी याद रखना चाहिए कि सबसे अच्छा जो वक्तव्य वह अपने को दे सकता है वह अन्तिम सत्य के एक अत्यन्त अपर्याप्त प्रतीक के सिवा और कुछ नहीं है। मानव संस्कृति मनुष्य को अपंग नहीं देख सकती। महात्मा गॉधी ने यह कहा था कि मशीनों का उपयोग करो पर यह ध्यान रखो कि कहीं मनुष्य बेकार तो नहीं हो रहा है। मैं यंत्रों का विरोधी नहीं हूँ, मैं तो उसके पागलपन का विरोधी हूँ। आज यन्त्र के कारण एक व्यक्ति लाखों व्यक्तियों का मालिक बन जाता है। इसके पीछे मनुष्य के परिश्रम को बचाने की मानवीय भावना नहीं, बल्कि मुनाफे का शुद्ध लोभ है।

भारतीय समाज में परम्परागत संस्कृति की उपादेयताः संस्कृति एक व्यापक शब्द है जिसकी धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक एवं साहित्यिक सन्दर्भों में व्याख्या की गयी है। संस्कृतज्ञ विद्वानों के अनुसार संस्कृत शब्द 'सम' उपसर्गपूर्वक कृ धातु से सुट का आगम करके कृत प्रत्यय लगाकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है उत्तम बनाना, संशोधन करना या परिष्कार करना। भारतीय संस्कृति की विशिष्ट विशेषता उसकी अहिंसा प्रियता में दृष्टिगत होती है और अहिंसा प्रियता मात्र मनुष्य-मनुष्य में नहीं बल्कि सभी जीवों और वनस्पतियों के प्रति भी दिखायी देती है। चींटी से लेकर मनुष्य तक को हानि पहुँचाना और हरे पेड़ों को काटना भी हमारी आस्था और संस्कृति के विरुद्ध है। यही कारण है कि हमारे समाज में समन्वयात्मक प्रवृत्ति का विकास हो सका है। यह सभी विचार मात्र धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी व्यक्ति के लिए उसके प्राकृतिक परिवेश के लिए सदैव ही लाभकारी है।

सांस्कृतिक मूल्यों के भारतीय जीवन पर पड़े प्रभावों को मापना : वास्तविक अर्थों में मूल्य वही सत्य है जो देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार समाज के संतुलित संचालन के लिए तय किये जाते हैं जिनमें अधिकतर लोगों की सहमति जुड़ी होती है। सृष्टि के विकास क्रम के साथ-साथ समाज में बहुत से परिवर्तन होते रहते हैं किन्तु व्यक्ति के मूल चिन्तन में परिवर्तन होना अत्यन्त कठिन है क्योंकि जो विचार और चिन्तन अर्थात् संस्कार व्यक्ति को पूर्वजों से प्राप्त होते हैं उनको परिवर्तित करना इतना सरल कार्य नहीं है। हमारी संस्कृति हमारे जीवन में व्याप्त है और उसकी रचना एवं विकास में अनेक सदियों के अनुभव सम्मिलित हैं।

इस प्रकार मानवीय जीवन पर जो प्रभाव संस्कृति डालती है, उसके मूल्य डालते हैं, आस्थायें डालती हैं उनके प्रभाव को तोड़ पाना सम्भव नहीं है। बहुत से कार्य जो व्यक्ति मात्र ईश्वर से डरकर करता था आज उन्हें वैज्ञानिक अर्थो पर भी पुष्ट किया गया है। अनेकों व्रत त्यौहार, उपवास और कर्मकाण्ड उसी प्रकार किये जाते हैं जैसे कई पीढ़ियों पूर्व किये जाते थे। इन कार्यों में तर्क का कोई स्थान नहीं है। कुछ मूल्य जिनमें मानवीय विकास के साथ परिवर्तन आया उनमें अस्पृश्ता,

सती प्रथा और बाल-विवाह प्रमुख है। समाज में शैक्षिक स्तर के बढ़ने पर मनुष्य ने अपने तर्क के द्वारा कुछ प्रथाओं को समाप्त करने में विशेष कार्य किया है।

सांस्कृतिक मूल्यों के विभिन्न स्वरूपों का विवेचन : वह व्यक्तिगत मान्यतायें जिनका मनुष्य के जीवन से सीधा सम्बन्ध होता है वही हमारे समाज के मूल्यों के रूप में सामने आती है। जैसे वर्ण व्यवस्था, विवाह प्रथा आदि इस प्रकार के नियम है जिनका समाज से सीधा सम्बन्ध है। सामाजिक व्यवस्थायें अटल नहीं होती हैं। उनमें सदा परिवर्तन होता रहता है। संस्कृति सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी रहती है।

भारत जैसे बहुधर्मी देश में धर्मनिरपेक्ष का सम्बन्ध स्थापित करना: देश की स्वतंत्रता के साथ ही यह निश्चित किया गया कि हमारा देश गणतन्त्र धर्मनिरपेक्ष होगा। भारतीय संविधान में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध धर्म, जाति, वर्ण, लिंग अथवा जन्म स्थान अथवा उनमें से किसी एक के आधार पर कोई भी भेद नहीं करेगा। सब व्यक्तियों कों विश्वास की स्वतंत्रता का तथा किसी धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने तथा प्रचार करने का समान अधिकार है। धर्म, जिससे व्यक्ति को निरपेक्ष रहना है उसके दो रूप हैं। एक दार्शनिक, जो अदृश्य जगत का नियंत्रण करता है और दूसरा सामाजिक, जो आचार-विचार और पूजन, कर्मकाण्डों, शादी, विवाह, उत्तराधिकार, भाषा, धार्मिक स्थानों कि उपयोग अदि की द्वारा अभिव्यक्त होता है। हर नागरिक को यह अधिकार है कि वह उसके किसी भी रूप को स्वीकार करें। यही भावना समस्त धर्मो के मानने वाले व्यक्तियों में समन्वय की भावना का विकास कर सकती है। धर्म का सामाजिक रूप निरन्त बदलता आया है इसलिए व्यक्तियों को एकमत होने और उसे नया रूप देने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। धर्मनिरपेक्ष देश में शासन द्वारा दिये गये हिन्दू कोड बिल, मुस्लिम कोड बिल या ऐसी ही जाति या धर्म के नाम पर निकाले गये बिल कोई महत्व नहीं रखते। न ही धर्म निरपेक्ष राज्य में अल्पसंख्यकों या बहुसंख्यकों के अधिकार अलग-अलग होते हैं।

मनुष्य का जीवन, समृद्धि और उसकी सांस्कृतिक धरोहर बहुत सी बातों पर निर्भर करती है। जिसमें पर्यावरण, जनसंख्या, प्राकृतिक संसाधन, विज्ञान, तकनीक, अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्रीय एकता, व्यक्ति की रचनात्मकता की प्रकृति, देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था, शिक्षा पद्धति एवं कार्यकुशलता आदि सभी सम्मिलित हैं। इन्हीं सबसे किसी भी समाज का निर्माण होता है। प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन रहना बहुत आवश्यक है। जब भी यह संतुलन बिगड़ता है, सभ्यताओं का पतन और आन्तरिक विघटन प्रस्तुत हो जाते हैं। जनसंख्या वृद्धि के कारण समाज में वस्तुओं की मॉग बढ़ती है। उस मांग को पूरा करने के लिए विज्ञान और तकनीक का अंधाधुंध सहारा लेना पड़ता है। इसी से पर्यावरण व्यवस्थापन की समस्याओं का जन्म होता है।

आज हमारी भूमि की रचना में पविर्तन सांस्कृतिक प्रतिमानों में परिवर्तन, आनुवंशकीय व्यवहारों एवं जीने के तौर-तरीकों को तकनीकी विकास प्रभावित कर रहा है। इस प्रकार उपरोक्त विवेचन को पूर्णतः समझने के पश्चात् प्रस्तुत शोध समस्या के अध्ययन के लिए जो प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किये हैं वह इस प्रकार हैं :-

क) भारतीय समाज की परम्परागत संस्कृति की उपादेयता को समझना।

ख) परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों का भारतीय मानव जीवन पर पड़े हुये प्रभावों को मापना।

ग) सांस्कृतिक मूल्यों के विभिन्न स्वरूपों का स्पष्टीकरण।

घ) धर्मनिरपेक्ष राज्य में अनेक धर्मों का सम्बन्ध।

ड.) भारतीय जीवन मूल्यों का अनेक धर्मों पर पड़े प्रभावों का पृथक-पृथक तुलनात्मक अध्ययन।

च) हिन्दू, मुस्लिम, सिंख, ईसाई, बौद्ध और जैन आदि की संस्कृतियों में समानता।

छ) भारतीय समाज की एकता तथा उत्थान के लिए विविध जीवन मूल्यों को शिक्षा में अंगीकार करने के लिए आवश्यक सुझाव तथा निर्देश देना।

इस अध्ययन में शोधकर्ता ने उपरोक्त जिन छैः धर्म समूहों का चयन किय है उनके चयन ढंग अर्थात चयन करने की विधि शोध पद्धति पर आधारित है। जिनका वर्णन शोध अध्ययन की विधि के अन्तर्गत किया गया है। साथ ही साथ इस चयन में शोधकर्ता ने उक्त प्रत्येक धर्म समूह के 250-250 उच्च शिक्षा की छात्र-छात्राओं का चयन किया है। यह संख्या गणना की दृष्टि से उपयुक्त, सरल और सांख्यकीय तथ्यों पर आधारित है। प्रत्येक समूह के 250 छात्रों के चयन करने में शोधकर्ता ने 25 प्रतिशत निरक्षर, 25 प्रतिशत साक्षर, 25 प्रतिशत समाज के विविध वर्गीय विद्वान तथा शेष 25 प्रतिशत धार्मिक धर्म सुधार वेत्ताओं का चयन किया है। ऐसा करने में शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि धर्म विशेष में चार वर्ग के लोगों का मत सर्वसम्मत एवं मान्य होगा। अतः उनकी परम्परायें, उनके जीवन मूल्य, उनकी शिक्षा एवं उनकी आदर्शवादिता किस स्तर तक सामाजिक क्रियाकलापों से प्रभावित दिखायी देती है आदि-आदि का अध्ययन इस शोध ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है।

इतिहास किसी भी ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन है जो सम्पूर्ण सत्य के लिए समालोचनात्मक खोज का प्रतिनिधित्व करता है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक साधनों एवं प्रविधियों का प्रयोग वैज्ञानिक एवं सामाजिक क्षेत्रों सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन के लिए किया गया है।

ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य अतीत की घटनाओं को एकत्रित करना तथा उनका विश्लेषण करना है। अनुसंधानकर्ता अतीत की पृष्ठभूमि में विभिन्न विचार धाराओं की व्याख्या करता है तथा वर्तमान समय की आवश्यकताओं के संदर्भ में उनका मूल्यांकन करता है।

मानवीय जीवन में मूल्यों की विश्वसनीयता : *परम्परागत एवं व्यावहारिक जीवन मूल्य-स्थूल रूप से जीवन मूल्य दो प्रकार के होते हैं परम्परागत जीवन मूल्य और व्यावहारिक जीवन मूल्य। कुछ जीवन मूल्य जो परिवर्तनशील होते हैं, उन्हें शास्त्रों में 'युगधर्म' कहा गया है। कुछ जीवन मूल्य नैसर्गिक एवं शाश्वत होते हैं, उन्हें शाश्वत होते हैं, उन्हें 'सनातन धर्म' कहा जाता है। वर्तमान में मूल्यों में अधिक परिवर्तनशील दृष्टिगत होती है। हमारे विविध सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का प्रमुख शक्तिशाली स्रोत हमारी सामाजिक संस्कृति रही है। संस्कृति हमारे प्राचीन मूल्यों का सम्पोषण एवं नियंत्रण करती है। जन्म के साथ ही बालक परिवार का सदस्य हो जाता है। स्नेह, दया, त्याग, कर्तव्य, परोपकार और मैत्री जैसे नैतिक मूल्यों की शिक्षा उसे परिवार में ही मिलती है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण बतायें हैं। जिस मनुष्य में यह पाये जाते हैं वह ही सत्यपुरुष है, सचरित्र है, यह भारतीय कसौटी है।*

राष्ट्रीय शैक्षणिक, प्रशिक्षण एवं अनुसंधान परिषद, *नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित एक पुस्तिका में नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक तिरासी जीवन मूल्यों का परिगणन किया गया है। इन मूल्यों का निर्धारित विभिन्न शैक्षणिक आयोगों तथा समितियों के प्रतिवेदनों एवं गॉधी साहित्य के अध्ययन के आधार पर किया गया है।*

जीवन मूल्यों का वर्गीकरण :-

शैक्षणिक मूल्य *-शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययन, अध्यापन, अनुशासन, नियम पालन आदि मूल्य शैक्षिक मूल्य कहलाते हैं।*

सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्य- *राष्ट्रीय एकता, अन्तर्राष्ट्रीय भावना, सामाजिक दायित्व, आदर्श, प्रजातन्त्र, नागरिकता और मानववाद आदि मूल्यों को इसके अन्तर्गत रखा गया है। किसी भी समाज और देश की सामाजिक, राजनैतिक प्रणाली के परिरक्षण, परिष्कार एवं संवर्धन के लिये सामाजिक तथा राजनैतिक मूल्य अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।*

वर्तमान विकसित वैज्ञानिक नव जीवन मूल्य- *वैज्ञानिक मूल्य प्रामाणिक सत्यता अर्थात दिखायी देने वाले निष्कर्ष पर विश्वास रखकर समाज में प्रचलित होते हैं। यह जीवन मूल्य एक ओर सदा सद्विवेक बुद्धि को जगाकर हमारी अनेक भ्रान्तियों एवं अन्धविश्वासों को दूर करता है। वहीं दूसरी ओर यदि इस विवेक को बुद्धि के साथ आत्मसात न किया गया तो यह मनुष्य में अनास्था एवं अनात्मवाद का बीजारोपण करता है। आचार्यों ने विज्ञान और धर्म के समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया है।*

अर्न्तराष्ट्रीय मूल्य*-किसी जाति, समूह या देश विशेष से सम्बन्धित न होकर जिन मूल्यों का सरोकार सम्पूर्ण विश्व की प्रगति एवं भलाई से होता है, वे मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य कहलाते हैं।*

पर्यावरण सम्बन्धी मूल्य*-वृक्षों के प्रति सरोकार, पर्यावरण की शुद्धि के प्रति जागरूकता, वृक्षारोपण एवं वृक्षरक्षण आदि मूल्य इस श्रेणी में आते हैं।*

सांस्कृतिक मूल्य- *सांस्कृतिक मूल्यों में उन सभी मूल्यों का समावेश होता है, जो कि हमारी सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखने एवं उसके*

विकास के द्वारा राष्ट्र में सांस्कृतिक एकता का वातावरण बनाये रखने में सहायक होते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के अन्तर्गत सहिष्णुता, दूसरों के धर्म तथा सम्प्रदाय के प्रति आदर की भावना आदि मूल्यों का समावेश होता है।

संस्कृति मूल्य- कोई भी संस्कृति मनुष्य के लिये स्थायी एवं पूर्ण रूप से उपयोग तभी हो सकती है जबकि वह उसे समस्त पार्थिव जीवन मूल्यों के अतिक्रमणार्थ एक प्रकार का दुर्लभ एवं विश्वातीत ऊर्ध्वमुख प्रवेश देने के लिए अतिरिक्त कुछ और भी प्रदान करें। वास्तव में संस्कृति जीवनयापन का एक विशेष प्रकार है।

नयी शिक्षा नीति और मूल्यपरक शिक्षण-नयी शिक्षा नीति के दस्तावेज में उल्लिखित है कि सभी प्रकार के विचारशील लोग मूल्यों के तेजी से हो रहे हास तथा उसके परिणाम स्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण से बहुत विक्षुब्ध है। यह स्कूलों, कालेजों तथा विश्व विद्यालयों के छात्रों और शिक्षकों में व्याप्त है। अतः यह आग्रह किया जाता है कि शिक्षा की प्रक्रिया का पुनः अभिविन्यास किया जाये। सुसंगत तथा व्यवहार्य मूल्य प्रणाली को ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से लागू किया जाये तो जीवन के प्रति तर्कसंगत, वैज्ञानिक और नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित हो।

जीवन मूल्य और वर्तमान भारत : प्राचीन काल में हमारा समाज धर्म प्रधान था और शिक्षक पद्धति धार्मिक थी। वह सभी कार्य जो सामाजिक कर्तव्यों की दृष्टि से उचित नहीं थे, पाप माने जाते थे। मनुष्य के मन में ईश्वर के प्रति भय था जिसके कारण वह सामाजिक दृष्टि से ही गलत कार्यों को नहीं करता था। वर्तमान समय में मनुष्य का चिन्तन इतना अधिक यथार्थवादी है कि वह पाप और पुण्य में कोई अन्तर नहीं समझता। सामान्य रूप से कुछ जीवन मूल्यों का प्रचलन प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक समान रूप से चलता आ रहा है। कुछ ऐसे जीवन मूल्य हैं जो प्राचीन काल के ऐतिहासिक पन्नों से लेकर वर्तमान समय तक अपने उसी रूप-स्वरूप में अपनाये जा रहें हैं। शोधकर्ता ने अपने अध्ययन में इन 21 जीवन मूल्यों को मानव समुदाय में परमावश्यक देखा है। सत्य, धर्म भक्ति भावना), विश्वास, करूणा, दया, विन्रमता, सहानुभूति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वाधीनता, सरलता, ईमानदारी, अनुशासन, देशभक्ति, स्वावलम्बन, आत्म-संयम, शान्ति, साहस, परहित, न्याय, नेतृत्व तथा एकता।

जीवन मूल्यों की विश्वसनीयता का प्रतिशत : शोधकर्ता का उद्देश्य विश्वसनीयता के इस प्रतिशत से यह है कि कौन सा जीवन मूल्य अपने दृढ़ आधार में आदि से वर्तमान तक एक सा टिका हुआ है। विश्वसनीयता विश्वास पर टिका हुआ केन्द्र बिन्दु है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति जिस मूल्य को एक सा आंकता है और समझता है उसे वह मूल्य विश्वसनीय प्रतीत होता है। उसकी इस धारणा में भावी जीवन के कल्याण की योजना छिपी रहती है। वस्तुतः मूल्य कभी समाप्त नहीं होते समय की गति और समाज की परिस्थितियोंवश आवश्यकता न होने पर दब जाते हैं और दबे रहते हैं अथवा उनके स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है। वर्तमान भारत देश में विभिन्न सम्प्रदायों का बाहुल्य है। जीवन को

अनुशासित और नियंत्रित रखने की शक्ति सभी धर्मो में है लेकिन फिर भी हमारे मूल्य खंडित हो रहे हैं, हमारा नैतिक अवमूल्यन हो रहा है, हमारी आस्थायें विखण्डित हो रही हैं, सामाजिक विघटन हो रहा है और परिवार छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। भारत में अर्थनीति, शिक्षा प्रणाली, विकास प्रक्रिया, वेशभूषा, खानपान और जीवनशैली सभी पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का बेहद प्रभाव पड़ा। हमारे देश का चिन्तन वस्तुवादी देशों के समान हो गया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती, रवीन्द्र नाथ टैगोर, मैडम मॉण्टेसरी, महात्मा गॉधी आदि सभी शिक्षा दार्शनिकों ने स्वकालीन शिक्षा पद्धति को नया स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इन सभी ने शिक्षा के बौद्धिक या उपदेशात्मक स्वरूप के स्थान पर मानवीय गुणों या आदर्शों के प्रायोगिक या व्यवहारिक पक्ष पर ही बल दिया है। आज आचरण, सत्य, अहिंसा, प्रेम, शान्ति जैसे शाश्वत परम्परागत मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा की बहुत आवश्यकता है। ये मूल्य न केवल व्यक्तिगत उत्थान के लिये अपितु सामाजिक एकता और राष्ट्रीय प्रगति एवं शान्ति के लिये भी बहुत आवश्यक हैं। शोधकर्ता के अनुसार आज शिक्षा का कार्य मानवीय मूल्यों में आती हुयी गिरावट के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कारणों पर विचार करके वर्तमान परिस्थितियों में उपलब्ध संसाधनों की सहायता से शिक्षण पद्धति में सुधार लाना है। विविध मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करके ही समाज को सुन्दर, समायोजित और सुदृढ़ बनाया जा सकता है। वर्तमान भारत में आज इन मूल्यों की पुनः स्थापना की आवश्यकता है जिनको पीढ़ी ने पाश्चात्य सभ्यता की चमक-दमक में छोड़ दिया है। ऐसा करके ही हम समाज को एक प्रतिष्ठित समाज के रूप में स्थापित कर सके हैं और शिक्षा की भूमिका इसमें सर्वाधिक है।

सन्दर्भ

1 डा0 आत्मानन्द मिश्र शिक्षा और दर्शन,विद्या पब्लिकेशन, सागर

2 अनिल शर्मा मानवीय शिक्षा दर्शन, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद

3 अवध नारायण शर्मा, श्रीमदभगवदगीता, कैलाश प्रकाशन, रामगढ़

4 आदि कवि बाल्मीकि, रामायण, स्टीम प्रेस, बम्बई।

5 दामोदर धर्मानन्द कोसंबी, प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, कैलास प्र0 इलाहाबाद

6 देवीदास चटटोपाध्याय, दर्शन शास्त्र के स्रोत, विनोद प्रकाशन, आगरा।

7. जे.सी. अग्रवाल, नई शिक्षा नीति, प्रभात प्रकाशन, आगरा।

8. कृष्ण कुमार, राज, समाज और शिक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

9. डा0 करूणा शंकर मिश्र, मूल्य शिक्षण, विनोद प्रकाशन, आगरा।

10. डा. के. सी. मलैया, नैतिक शिक्षा शिक्षण, विनोद प्रकाशन, आगरा।

11. मृणालकांति गंगोपाध्याय, भारत में दर्शनशास्त्र, विनोद प्रकाशन, आगरा।

12. मदन मोहन सक्सेना, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन, सुबोध प्रकाशन, कानपुर-14
13. मोहम्मद फारूख खाँ, कुरआन मजीद, हिन्दी अनुवाद, मकतबा अलहसनात, रामपुर उ0प्र0
14. डा0 नत्थू लाल गुप्त, मूल्य परक शिक्षा
15. पाठक एवं त्यागी, भारत में शिक्षा दर्शन और शैक्षिक समस्यायें, विनोद प्रकाशन, आगरा।

INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERPRETATION OBSERVATION & ANALYSIS